'गङ्गासागरीयम्' महाकाव्य में प्रकृति चित्रण

डॉ. कार्तिककुमार पण्ड्या¹

गङ्गासागरीयम्² पं. विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा प्रणीत काव्य कृति काव्यशास्त्रीय की अनेक विशेषताओं के कारण वस्तुतः स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। गंगा और सागर को पं. विष्णुदत्त शुक्ल नए मानवीकृत कर सचेतन रूप में समासोक्ति के अध्ययन से नायक – नायिका रूप में निरूपित किया है, यहि इनकी मौलिक काव्य-उद्भावना है। जिसकी अद्भुत रसनिष्पत्ति से काव्य के सहृदय श्रोता-पाठक-चमत्कृत और आनन्दित हो जाते हैं। यही इस काव्य कृति और कृतिकार की महती सारस्वत सफलता है।

गङ्गासागरीयम् वस्तुतः एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें गंगा जी के जीवन के एक अंश को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पतितपावनी गंगा का व्यक्तित्व मानव कोटि में नहीं, बल्कि देव कोटि में आता है। उनके अवतरण से लेकर सागर मिलन तक की कथा इस काव्य में चित्रित की गई है।

गङ्गासागरीयम् के रचयिता पं. विष्णुदत्त शुक्ल का जन्म सन १८८५ ई.में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद में स्थित कर्नाईपुर नामक गाँव में हुआ था। उनके पूज्य पिता पं. मिश्री लाल शुक्ल और माता का नाम शिवरानी देवी शुक्ल था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा - दीक्षा उन्नाव में तत्पश्चात् उच्च शिक्षा वाराणसी के बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई। आचार्य जे.वी.कृपलानी और डॉ. सम्पूर्णानन्द की प्रेरणा से कालान्तर में काशी विद्यापीठ में भी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अध्यापन कार्य भी किया। पं. विष्णुदत्त शुक्ल आदर्श अध्यापक, उत्साही, साहसी, स्वाधीनता, सेनानी तथा दैनिक प्रताप एवं सहयोगी नामक पत्रों से जुड़े एक निर्भीक पत्रकार, समर्पित साहित्य प्रेमी और श्रेष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता थे।

प्रकृति चित्रण

कवि ने 'गङ्गासागरीयम्' काव्य में प्रकृति चित्रण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। प्रकृति वस्तुतः मानव की सहचरी है। इस काव्य में शुक्ल जी ने हिमालय पर्वत उसकी उपत्यका, अध्यस्थित, मैदानी क्षेत्र के वनों, उपवनों, वृक्षों, लताओं, वनस्पतियों, सुरभित, पुष्पों, झरनों, पशुओं, पक्षियों और सरिताओं का नैसर्गिक वर्णन किया है। वर्णन में विशदता और यथार्थता दोनों ही गुण विद्यमान है। कवि ने हिमवान् का प्रत्यक्ष भ्रमण किया था। अतः उनका वर्णन कल्पना प्रसूतन ही नहीं बल्कि वास्तव है। भौगोलिक दृष्टिकोण से कोई भी वर्णन अप्रीति जनक नहीं है। निम्नांकित श्लोक उनकी चित्रण कला पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

वाट्यादिभिस्सुन्दर वृक्षवर्गैः लताप्रतानैर्हरितैस्तृणैश्च।
सरीसृपैः पक्षिमृगादि यूथैः सम्पन्नमस्यस्य पदं समग्रम्॥

(गङ्गाराज्यवर्णनम्, २)

वाटिकाओं से सुन्दर, वृक्ष वर्गों से सुशोभित, लताओं और झाड़ी से सुशोभित, हरि-हरि घास के द्वारा और पक्षी एवं मृगादि के समूहों से सम्पूर्ण पद (क्षेत्र) सम्पन्न और सुशोभित है।

जलप्रपातैः पयसो नदीभि वनैर्मनोज्ञैः पवनैः वनान्तैः।

¹ संशोधन अधिकारी, संशोधन-प्रकाशन विभाग, श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी, वेरावल, जिल्ला – गीर-सोमनाथ, गुजरात - 362265, Email:

kartikpandyav@gmail.com

² गङ्गासागरीयम्, पं. विष्णुदत्त शुक्ल, सं. डॉ. वृजलाल वर्मा, प्रयागराज, प्रथम संस्करण, १६८२

संशोभितोऽसौ हिमवत् प्रदेशः ईर्ष्यास्पदं स्यात् सुरपत्तनस्य ॥

(गङ्गाराज्यवर्णनम्, ३)

कवि शुक्ल जी प्रकृति वर्णन का सुन्दरतम् व्याख्यान करते हुये लिखते है- झरनों के जलों से, पानी वाली नदियों से, मन को हरण करने वाले वनों से, वन में बहने वाली हवा से हिमालय के समान यह बर्फ से आच्छादित प्रदेश सुशोभित हो रहा है तथा इन्द्रपुरी अमरावती भी इससे ईर्ष्या करती है। प्राकृतिक दृश्यों को कवि ने कहीं आलम्बन के रूप में तो कहीं उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किया है।

वनस्पतीनां बहुभिर्निकुंजै नानाविधैश्यामल शस्य पुञ्जैः।

फलोच्चयैः प्रस्फुटितैः प्रसूनैरुद्यानशोभा विधेहि राज्यम् ॥

(गङ्गाराज्यवर्णनम्, ३)

बहुत सी वनस्पतियों की निकुंजों से, बहुत से हरे भरे पुष्पों के पुञ्जों से तथा खिले हुये पुष्पों और फलों के समूह से यह उद्यान की शोभा, राज्य की शोभा को बढ़ा रही है। प्राकृतिक चित्रण में कवि ने अत्यन्त कोमलकान्त पदावली तथा भाषा के सरलतम रूप का उपयोग किया है। यहाँ तक कि उसमें समासों और संधियों में व्याकरण निषिद्ध स्वातंत्र्य का उपभोग किया है। जहाँ दो शब्दों में सन्धि हो रही है। कवि ने अभिव्यक्ति की जटिलता एवं दुरुहता से रक्षा करने के प्रयोजन से सन्धि नहीं होने दी। कई स्थलों में कवि ने संस्कृत भाषा में नितान्त अप्रचलित शब्दों तथा कारकों का प्रयोग किया है।

कस्तूरिका केसरगन्धयोगात् स्वयं प्रकृत्याकृत चारुवेशात्।

ऐश्वर्य संभार निधेर्धरित्र्याः नाकालकां राज्यमपाकरोति ॥

(गङ्गाराज्यवर्धनम्, १०)

यह कस्तूरी और केसर की गन्ध से सुशोभित था तथा स्वयं ही उसने प्रकृति का श्रृंगार किया था। प्रकृति की सुषमा से तथा ऐश्वर्य की निधि से यह धरती से युक्त यह राज्य ने स्वर्ग को भी तिरस्कृत कर दिया था।

क्षेत्राणि शस्येन समाकुलानि पयः प्रपूर्णा अपि धेनुवर्गाः।

संतुष्ट चिन्तास्सततं मनुष्या हेमन्त ऐश्वर्यमयो विभाति ॥

(गङ्गाराज्यवर्णनम्, २१)

हरे भरे क्षेत्रों के समूहों से, दूध देने वाली गायों के समूहों से और सन्तुष्ट चित्त वाले मनुष्यों के द्वारा हेमन्त के ऐश्वर्य के समान यह राज्य सुशोभित हो रहा है। कवि कुलगुरु कालिदास ने दिलीप गो सेवा सन्दर्भ में सघन वनों और सौन्दर्य शोभा का मनोहारी चित्रण किया है। लगभग वैसा ही भव्य वर्णन शुक्ल जी द्वारा रचित इस श्लोक में दृष्टिगोचर होता है-

शस्यैर्मयूरैः परिसेवितानि हरिततृणाच्छादनसज्जितानि ।

तत्रैव गंगैक्षत् शादूलानि श्यामायमानानि च विस्तृतानि ॥

(गङ्गाप्रस्थानम्, २५)

शुक्ल जी 'रघुवंशम्' महाकाव्य की भांति प्रकृति चित्रण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि नृत्य में संलग्न, मयूरो द्वारा सेवित, हरि घास के आच्छादन से सुशोभित, गंगाजल सिंचित सादृदबल श्यामवर्ण के प्रतीत हो रहे हैं। 'कुमारसम्भवम्' में कालिदास ने हिमालय पर्वत की विशिष्टता का मनोहारी चित्रण किया है। लगभग वैसा ही चित्रण गङ्गासागरीयम् में भी दृष्टिगोचर होता है-

गङ्गासागरीयम् का प्रारम्भ कालिदास के विश्रुत काव्य 'कुमारसम्भवम्' के भांति ही होता है। शब्दावली भाव, छंद सभी में शुक्ल जी प्रभावित है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरौ तौयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥

(कुमारसम्भवम्,)

चित्र-विचित्र पंखो से, सुशोभित होने वाले मयूरों से, हरि भरी घास के विद्वानों से, पूर्व तथा पश्चिम में फ़ेले हुये समुद्र के द्वारा अवगाहित यह पृथ्वी के मानदण्ड के समान यह हिमालय सुशोभित हो रहा है।

अस्त्युत्तराखण्डपदे समृद्धे स्वनामधन्यो हिमवान् महीभृत।

आश्याम् पेशावरविस्तृतस्य राज्यस्यनन्तं विभवस्य तस्य ॥

(गङ्गाराज्यवर्धनम्, १)

ग्रंथ के प्रारम्भ में पर्वतराज हिमालय की विषदता का वर्णन करते हुये शुक्ल जी लिखते हैं कि वैभव से परिपूर्ण, उत्तराखण्ड में हिमवान् नानक स्वनाम धन्य पर्वत है। आसाम् से पेशावर तक अर्थात् भारतवर्ष की पूरी उत्तरी सीमा पर विस्तृत राज्य के ऐश्वर्य का अंत नहीं है, वास्तव में उसका वैभव तो वर्णनातीत है।

दोनों ही कवियों ने हिमालय को पर्वताधीश के रूप में प्रस्तुत किया है। दोनों ने ही हिमालय के विपुल विस्तार की चर्चा अपनी - अपनी काव्य शैली में की है। कालिदास ने आगे चलकर हिमालय के वैभव वर्णन में 'प्रभवस्य यस्य' शब्दावली का प्रयोग किया है। और कविवर शुक्ल जी ने उपर्युक्त श्लोक में विभवस्य तस्य शब्दावली का प्रयोग किया है। 'गङ्गासागरीयम्' काव्य में कालिदास का प्रभाव निम्नलिखित लक्षित होता है, किन्तु यह निष्प्राण अनुकरण कदापि नहीं है।

कवि कालिदास उपासना के सन्दर्भ में शैव थे। शुक्ल जी भी पैतृक परम्परा से शैव थे। उनके गाँव के बाहर एक कामतेश्वर का मंदिर है। जहाँ शुक्ल जी गाव में होने पर निरन्तर जाते थे। उन्होंने भगवान् कामतेश्वर पर संस्कृत में स्तुति परक कई काव्यात्मक श्लोकों की रचना की थी। कालिदास के 'रघुवंशम्' महाकाव्य का १७ श्लोक निम्नांकित है।

स पल्लवोत्तीर्णवराहयूथान्वास वृक्षोन्मुखबर्हिणानि।

ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ॥

(रघुवंशम्, २.१७)

पत्तों से सुशोभित, वराह समूहों से व्याप्त, वृक्षों की कांति से कमनीय, मोरों तथा मृगों के नृत्य से, सिंहों से व्याप्त यह हरा भरा वन सुशोभित हो रहा है। इधर स्वगेह त्याग के पश्चात् गंगा का जो दृश्य दृष्टीगोचर हुए, उनका वर्णन शुक्ल जी ने केवल परम्परा में प्रस्तुत प्रायः उसी शब्दावली में किया है। यों तो 'गङ्गासागरीयम्' में ऐसे अनेक प्रसंग हैं किन्तु यहाँ यह श्लोक दृष्टव्य है-

शस्यैर्मयूरैः परिसेवितानि हरित् तृणाच्छादनसज्जितानि।

तत्रैव गंगैक्षतशाद्वलानि श्यामायमानानि च विस्तृतानि ॥

(गङ्गाप्रस्थानम्, २५)

शुक्ल जी प्रकृति चित्रण का वर्णन करते हुये लिखते हैं कि नृत्य में संलग्न, मयूरों द्वारा सेवित, हरि घास के आच्छादन से सुशोभित, गंगाजल संचित, सादृबल श्यामवर्ण के प्रतीत हो रहे हैं। श्री बदरीशधाम के वर्णन में शुक्ल जी लिखते हैं। शुक्ल जी ने पर्वत की उपत्यका में स्थित तीर्थ स्थानों के सुरम्य चित्र प्रस्तुत किये हैं-

निःसृत्य गेहात् हेमवत् सुता सा प्रापदद्वतुं श्रीबदरीशधाम।

नरस्वाररूपेण जगद्विताय नारायणो यत्र तपश्चकार ॥

(गङ्गाप्रस्थानम्, १२)

कवि बद्रीनाथधाम का चित्र प्रस्तुत करते हुये लिखता है कि पर्वतराज हिमालय की पुत्री अपने घर से निकलकर तीव्रगति से बदरीशधाम में पहुँची, जहाँ पर स्वयं भगवान् नारायण ने जन कल्याण के लिये मनुष्य का रूप धारण करके तपस्या की थी। वह स्थान वास्तव में इतना पावन और पुण्यप्रद है कि लोक मंगल के लिये स्वयं भगवान् नारायण ने भी तपश्चर्या की भी।

'गङ्गासागरीयम्' काव्य एक प्रबन्ध काव्य है। जिसमें भागीरथी गंगा के जीवन का एक अंश प्रस्तुत किया गया है। हिमवान् कन्या गंगा का व्यक्तित्व देव कोटि में आता है। उसी के जन्म से लेकर जीवन के एक खंड की कथा इस काव्य में ध्वनित की गयी है। ऋतुओं, दिवारात्रि, राज्य की स्थिति, प्रातः संध्या, पर्वतीय

दृश्यो, नदी-नद-सरोवर, पशु-पक्षियों, उद्यानों, सूर्य, चंद्र, नक्षत्रों आदि का अत्यन्त मनोहारी चित्रण किया गया है। विचित्र बात यह है कि यह कृति कथावस्तु की सीमा के आधार पर यह महाकाव्य की कोटि में आती हैं। इसे हम खण्डकाव्य और महाकाव्य के बिच की कोटि में रख सकते हैं। कवि ने इसी प्रसंग में देव प्रयाग काशी का भी मनोहारी चित्रण किया है-

तस्याद् यदाग्रे तनया चचाल देवप्रयाग सहसा ससाद।
तत्रैव गङ्गामिलितं सरागं सरवी समेतालक नन्दिनीति॥

(गङ्गाप्रस्थानम्, १४)

गंगा की गति और प्रवाह का चित्रण करते हुये कवि कहता है कि वह धारा बदरीनाथ के द्वारा चलते पवित्र देवप्रयाग नामक स्थान पर वहीं पर और छोटी नदियों के साथ अलकनंदनी बड़े प्रेम के साथ गंगा नदी में मिल गयी। आदरणीय शुक्ल जी ने प्राकृतिक हाथों का आलंबन और उद्दीपन दोनों ही रूप में प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं कवि ने प्रकृति के कार्यों को माध्यम बनाकर मानवीय चित्तवृत्तियों का सुन्दर चित्रण किया है।

प्राकृतिक चित्रण में कवि ने अत्यंत कोमलकान्त पदावली तथा सरलतम भाषा का उपयोग किया है। भाषा को सरल बनाने के उद्देश्य से कवि ने कहीं-कहीं समासों और संधियों में व्याकरण निषिद्ध भाषा का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं कवि ने ऐसे शब्दों का प्रयोग कर दिया है जो संस्कृत भाषा में मिलते ही नहीं है। कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण से साथ-साथ सम्बन्धित वातावरण के सृजन पर विशेष ध्यान दिया है।

आश्याम पेशावर विस्तृतस्य राज्यस्यनन्तं विभवस्य तस्य।

(गङ्गाराज्यवर्णनम्, १)

फिर भी बातें निर्विवाद रूप से सही है कि इस अनुकरण से मौलिकता में कोई अंतर नहीं आया है। यदि 'गङ्गासागरीयम्' को पूजा कृति कहा जाय तो इसमें कोई अतिरंजना नहीं है। इसमें आशुतोष शंकर और देवापगा गंगा के प्रति कवि द्वारा अध्यात्म परक स्तवन काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है-

कण्ठे त्रिलोकस्य हिताय पीतं हलाहलकैर्विधिभिः शुशोभ।

यथा क्वचित् राजत् पात्रमध्ये वभासते निलमणीः प्रभावान्॥

(गङ्गाकथारम्भः, ३४)

तीनों लोकों के हित के लिये भगवान् शंकर ने जो हलाहल विष पीया, वह ऐसा सुशोभित हो रहा है जैसे चांदी के पात्र में नीलमणि सुशोभित हो रही हो। इसमें कवि ने उपमा अलंकार का मनोहारी वर्णन किया है-

नेत्रं तृतीयं पृथुमालदेशे वहें तथा राजति चन्द्रबिन्दुः।

ग्रन्थेषु धर्मस्य कृतं सभक्त्या पूजाप्रसङ्गे तीलं यथा वा॥

(गङ्गाकथारम्भः, ३७)

भगवान् शंकर के मस्तक पर तीसरा नेत्र वैसे ही सुशोभित हो रहा है जैसे मोर के पंखों में चंद्रबिन्दु सुशोभित हो रहा है। धर्मग्रंथों में भक्ति से जिस तरह पूजा की जाती है वैसे ही उनके मस्तक पर तिलक सुशोभित हो रहा है।

रुद्राक्षः मालाः परिधाय देहे स्वीकृत्य शूलं डमरुं पिनाकम् ।

दृढासने शान्तविरक्तचित्त आसीन् आसीत् भगवन् महेश॥

(गङ्गाकथारम्भः, ४१)

भगवान् शंकर अपने कण्ठ में रुद्राक्ष की माला धारण कर रहे हैं तथा त्रिशूल, डमरु पिनाक धनुष जिनके हाथ में सुशोभित हो रहे हैं। तथा दृढ आसन लगाये हुये शान्तभाव से विरक्त चित्तवाले भगवान् शंकर बैठे हुये सुशोभित हो रहे हैं। इस खण्ड महाकाव्य में पार्थिव वर्णनों के आवरण में विशुद्ध अध्यात्म नैतिकता अभिनिविष्ट की गई है। काव्य में शान्तरस, विप्रलम्भ, वात्सल्य तथा त्यागमूलक वीररस की

अवधारणा हुई है। केवल कथानक को आगे बढ़ाने में अभिधा का प्रयोग किया गया है। अन्यथा इसमें व्यंजना का प्राधान्य है।

आदरणीय शुक्ल जी का जीवन सदैव श्रम परायण, कर्मठ और साधनामय रहा। काव्य वास्तव में लेखक के विचारों का प्रतिबिम्ब होती है। अतः इस काव्य में कवि ने उद्योग, कर्मठता और साधना को विशेष महत्त्व दिया है। निम्नांकित भुजंगप्रभात छंदों में उनकी श्रम सम्बन्धी धारणा स्पष्टरूप से परिलक्षित होती है-

निशाय दिवावा प्रभाते प्रदोषे न तस्याः क्षणं चापि विश्रान्तिरासीत्।
अविच्छिन्न गत्या सदाग्रे प्रयाणां बभूवाथं तस्याः कृमं जीवस्य ॥

(गङ्गाबाललीला, २६)

कवि कहता है कि रात्रि, दिन, प्रातःकाल और सायंकाल में अर्थात् प्रतिक्षण वह गतिशील ही रहती थी और उसका थोड़ी देर के लिये भी विराम नहीं होता था। अविच्छिन्न गति से आगे बढ़ने वाली गंगा का यह जीवन क्रम ही बन गया।

अनेन क्रमेण स्वकेनेह गङ्गा महत्तत्वं श्रमस्य प्रतिष्ठापयन्ती।
जनान् सा समुद्बोधयाभास संवनि श्रमाभ्यासमेवेहि कुर्यात् यत्नैः ॥

(गङ्गाबाललीला, २७)

कवि कहता है इस क्रम में गंगा ने परिश्रम के महत्त्व को स्थापित किया और मानव समाज को यह उद्बोधन दिया कि उसे अपने विकास के लिये यत्नपूर्वक परिश्रम करना चाहिये।

श्रमेणैव सिध्यन्ति कार्याणि लोके श्रमेणैव लोकोत्तरं चापि लभ्यम्।
श्रमेणैव चोत्कर्षतां यान्ति लोकाः श्रमं साधमध्वं श्रमं साधमध्वम् ॥

(गङ्गाबाललीला, २६)

श्रम के द्वारा ही कार्य सफल होते हैं, परिश्रम से ही दिव्य लोक की भी प्राप्ति होती है, इसलिये कवि प्रेरणा देते हुये कहता है कि हमें निरन्तर श्रम की ही साधना करनी चाहिये।

श्रमस्यैव चास्य प्रभावैः कदाचित् जयं सर्वदा जीवने सा प्रपेदे।
गते वासरे वर्धमाना स्वकीर्या विशेषेण सा मानपात्रं बभूव ॥

(गङ्गाबाललीला, २६)

श्रम के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं कि गंगा ने परिश्रम के प्रभाव से ही सम्भवतः जय को प्राप्त किया है, दिन प्रतिदिन बहती हुई, कीर्ति से वह विश्व में आदर की पात्री बन गयी। गंगा हमें गतिशीलता, परिश्रम, कर्मठता और हृदय के प्रति तत्परता का पाठ पढाती है। शुक्ल जी भी निम्नलिखित श्लोकों के माध्यम से यही विचार प्रस्तुत करते हैं। वे अपनी काव्य साधना को सफल करने के लिये गंगा माता की ही स्तुति करते हैं-

इयं धरा शैव जटा कलापो विष्णोः पदं ब्रह्म कमण्डलुश्च।
पूता समस्ता कृपया मया सा गङ्गा गिरो मे विमली करोतु ॥

इसके अतिरिक्त शुक्ल जी के कुछ महत्त्वपूर्ण विचार हैं जिन्हें उन्होंने इस काव्य के माध्यम से प्रकट किया है। माता पिता द्वारा सन्तान के विवाह में कितना हस्तक्षेप होना चाहिए, इस बिंदु पर कन्या और पिता का जो विवाद है वह भी विचारणीय है। कवि की धारणा है कि विवाह के सम्बन्ध में सन्तान को स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उस प्रकार कवि नारी स्वतन्त्रता का भी पोषक है। कन्या द्वारा सागर को पति रूप में वरण करने में भी शुक्ल जी की आत्म भावना गुम्फित है।

गङ्गासागरीयम् की कथावस्तु का आधार परम्परागत गंगावतरण का ही पौराणिक आख्यान है। किन्तु गंगा का पृथ्वी पर अवतरण यह घटना भले ही इस काव्य का वर्ण्य विषय मान लिया जाये, कवि ने रचना में अपनी विलक्षण काल्पनिकता का परिचय दिया है। कवि की कल्पना प्रसूत वस्तुपरक मौलिक

उद्भावनायें, स्थापनायें एवं उपपत्तिया वर्णन में उपन्यासिक कौतूहल उत्पन्न करती है। कवि के अनुसार भारत के उत्तराखण्ड में हिमवान् नामक राजा है। जिसका राज्य सर्वतोभावेन समृद्ध, सम्पन्न और वैभवपूर्ण है। उसमें किसी प्रकार के अभाव का लेश भी नहीं है।

काव्य में अलंकारों के अत्यंत उन्मेष, रसों का अव्यावसायिक उद्वेक, भावुकता के मर्मस्पर्शी मोहक आवेश सहृदय पाठक के लिये एक महद्विभूति एवं अमृतोपय रसायन का कार्य करते हैं। पुण्योदका भगीरथी के अप्रतिहित प्रवाह के साथ ही कृति का काव्य प्रवाह ही अव्याहत चला है। गिरिराज हिमालय का वैराट्य, उसका नैसर्गिक सुषमा संभार, उसकी व्योमसंचारी ऊंचाईयों का वैभव तथा उसके गुहावगुण्ठित अन्तराल का औदार्य जैसे गंगाजल में गल कर सागर की अतुल जलराशि में समाहित हो गया है। गंगा के इतिवृत्त चित्रण में कविता कवि से जैसे सर्वथा असम्पृक्त होकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को संभाले संभाले स्वतः अग्रसर होती गयी। उसमें कल्पनाओं के उत्सव भावनाओं के स्त्रोत तथा चित्राणों के मनोहारी निर्भर अपनी सम्पूर्ण मनोज्ञता को समेटे हुये अनायास प्रस्फुटित हो रहे हैं। कवि ने अतीव कवित्वमयी शैली में गंगा की वन्दना में जो श्लोक प्रस्तुत किया है वह अपने में जैसे पूरी कथावस्तु का यथार्थसार बन गया है। जिस पर कवि ने अपनी कल्पनावल्लरी को आकर्षक ढंग से प्रसारित किया है।